द्वितीय अध्याय

SHIVAJI UNIVERSITY
LIBRARY
KOLHAPUR

✲ द्‌वितीय अध्याय ✲

"अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों का विषयगत विवेचन"

2.1 प्रास्ताविक -

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ब्रह्मदेव मिश्र कहते हैं - " अब्दुल बिस्मिल्लाह मार्क्सवादी प्रगतिशील रचनाकार हैं, प्रयोगवादी प्रयोगशील नहीं।"[1] वे एक ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने भोगे हुए यथार्थ को ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त किया है। उनका बहुमुखी व्यक्तित्व कविता, कहानी, उपन्यास, बाल-साहित्य नाटक, लोक-साहित्य आदि के क्षेत्र में परिलक्षित होता है। उन्होंने उपन्यासों के विषय के रूप में निम्न-मध्यवर्गीय समाज को केंद्र में रखा है। अत: उनकी दृष्टि निम्न-मध्यवर्गीय समाज पर टीकी हुई दृष्टिगोचर होती है।

उनका रचना-संसार कोरी कल्पना की उपज नहीं है, बल्कि उनके उपन्यासों के पात्र हमारे चारों ओर बिखर पड़े है। बिस्मिल्लाह जी की रचनाओं में मुस्लिम समाज और हिंदू समाज के त्यौहार, उत्सव, उनमें प्रचलित रूढ़ि-परंपरा, कुरीतियाँ, अंधविश्वास आदि का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता हैं। उनके उपन्यासों में समाज में व्याप्त भ्रष्ट राजनीति का चित्रण अधिक मात्रा में मिलता है। बिस्मिल्लाह जी के उपन्यास लेखन की प्रमुख विशेषता उनका जीवन बोध है और उनके उपन्यासों के पात्र विभिन्न संघर्षों का सामना करते हुए परिलक्षित होते हैं।

बिस्मिल्लाह जी के अब तक जितने उपन्यास प्रकाशित हैं उनका विषयगत विवेचन यहाँ प्रस्तुत है -

2.2.1 समर शेष है :-

'समर शेष है' प्रकाशन क्रम के अनुसार अब्दुल बिस्मिल्लाह का पहला और

---

1. सं. चंद्रदेव यादव - समकालीन कथा-साहित्य का एक रुक्न, पृष्ठ - 101

सफल उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन 1984 में हुआ। इस उपन्यास का प्रथम पुस्तकालय संस्करण वाणी प्रकाशन, दिल्ली से हुआ। यह उपन्यास अब्दुल बिस्मिल्लाह का आत्मकथात्मक उपन्यास है। उपन्यास का कथा-नायक सात-आठ साल की उम्र में ही मातृविहीन हो जाता है, जो शुरु से अंत तक अपना जीवन संघर्ष में बिताता है। कथा-नायक के मातृविहीन जीवन में आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि संघर्षो की भरमार दिखाई देती है।

विवेच्य उपन्यास के लेखन का उद्देश्य यह है कि यह उपन्यास समाज के किसी भी आदमी को जीवन के प्रति आस्थावान बनाता है। जीवन में आनेवाले विभिन्न संघर्षों से लड़ने का साहस देता हैं और मंजिल तक पहुँचने की प्रेरणा एवं दृढ़विश्वास देता है। स्वामी विवेकानंद ने कहा है - ''जिंदगी फुलों की सेज नहीं लड़ाई का मैदान है।''[1] निश्चित ही विवेकानंद का यह कथन 'समर शेष है' उपन्यास की पुष्टि करता है।

उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। कथा-नायक के पिताजी व्यापार और नौकरी के कारण पैतृक गाँव छोड़कर मध्यप्रदेश में रहते थे। पहली पत्नी को उन्होंने त्याग दिया था और वह मध्यप्रदेश के किसी शहर में रहकर मजदूरी करती थी । कथा-नायक के पिताजी दूसरी पत्नी के साथ रहते थे। कथा-नायक की दूसरी माँ का ध्यान कथा-नायक के सात-आठ साल की उम्र में ही हो जाता है। तब कथा-नायक और अब्बा मध्यप्रदेश छोड़कर बलापुर आते हैं। पिताजी कथा-नायक को बलापुर के इतिहास की जानकारी देते हैं। पिताजी का परिवार काफी बड़ा था। इनकी एक ही बहिन बची थी, जो भोपतपुर में ब्याही थी। इनके मँझले भाई का बेटा नजीर का परिवार बलापुर में ही था और वे उनके पास ही रहते थे। कई दिनों के बाद कथा-नायक और अब्बा के रहने के कारण नजीर और उसकी पत्नी में विवाद होता है। उस समय भाभी कथा-नायक के बारे में भैया से कहती है - ''ये लोग अब यही रहेंगे क्या ? भाभी भैया से पूछ रही थीं । लगता तो यही है । लेकिन यह नहीं हो सकता । याद है ना इसी बुढ़वा ने हमारी कुल गत कर दी थी ।''[2] कथा-नायक भाभी और भैया की बात सुनकर अब्बा को बता देता है। अब्बा निर्णय लेकर अपने दामाद मोहम्मद भैया के पास लालगंज चले आते हैं। जहाँ कथा-नायक की सौतेली बहन रहती थी।

---

1. सं. विश्वनाथ सचदेव - 'नवभारत टाईम्स' (मुंबई) दैनिक, पृष्ठ - 10
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 8

अब्बा कथा-नायक को लालगंज छोड़कर वे अपनी बहन के पास रहने के लिए चले जाते हैं। अब्बा के जाने के बाद कथा-नायक अनेक कठिनाइयों का सामना करता है। वह कहता है - ''मुझसे कहा जाता कि मैं कुएँ से पानी खींचकर ले आया करूँ और शाम को स्कूल से आकर जंगल जाया करूँ लकड़ियाँ ढोने के लिए।''[1] सात-आठ साल की उम्र में कथा-नायक कों इतने कठिन श्रम करने पड़ते थे। कथा-नायक इन परेशानियों से असहाय होकर अपनी बूआ के पास चला जाता है लेकिन वहाँ भोपतपुर में भी उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिन समस्याओं का सामना उन्होंने अपनी सौतेली बहन के पास किया था। फूफा यासीन साहब इन बाप-बेटों में से एक को ही घर में रखने को तैयार थे लेकिन उस समय कथा-नायक और अब्बा दोनों को एक-दूसरे का साथ आवश्यक था। क्योंकि कथा-नायक को भी प्यार की जरुरत थी और अब्बा की आँखें कमजोर थीं, इसलिए उन्हें भी कथा-नायक के साथ होना आवश्यक था।

भोपतपुर से फिर बाप-बेटे बलापुर आते हैं लेकिन बलापुर में भाभी नहीं चाहती थी कि वे रहे। फिर वहाँ से अब्बा और कथा-नायक की यात्रा लालगंज की ओर चल पड़ती है। लालगंज में मोहम्मद भैया भी इन्हें घर में लेने को तैयार नहीं थे। फिर भी शिक्षा के कारण मजबूरी से वे वहीं रहते हैं। क्योंकि स्वाभिमान से शिक्षा जरुरी है। लेकिन कुछ दिनों के बाद मोहम्मद भैया कथा-नायक और अब्बा को पुन: घर से निकाल देते हैं। भोपतपुर से कथा-नायक और अब्बा पुन: बलापुर जाते हैं। बलापुर जाकर अब्बा तहेदिल से नजीर से कहते हैं - ''देखो नजीर, इसे अपना भाई समझों या लड़का समझो, इसकी जिंदगी अब तुम्हारे हवाले हैं। ... तुम चाहे इसे पढ़ाओ और चाहे इससे मजूरी कराओ, यह अब तुम्हारी जिम्मेदारी है।''[2] अक्सर कथा-नायक की संघर्षमय जिंदगी का आरंभ यही से होता है। वह मन ही मन सोचता है और कहता है - ''भाग्य जिसे कहते हैं, वह यही है और खुदा जिसे कहते हैं वह बस यही कर सकता हैं। अब आदमी के भीतर अगर दम हो तो लड़े इनसे।''[3] कथा-नायक अपने आपको साहस दिलाता है। उसने अब्बा की लड़ाई और अम्माँ की अपनी अबला हैसियत से लड़ी लड़ाई को देखा था। इस कारण वह भी अपनी लड़ाई की योजना बना रहा था। इस योजना में कथा-नायक की अनेक

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 8
2. वही, पृष्ठ - 15
3. वही, पृष्ठ - 16

BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY

आशा-आकांक्षाएँ थीं। कथा-नायक अपनी दयनीय जिंदगी के कारण वृद्धावस्था में अब्बा की दूध पीने की मामूली इच्छा भी पूरी नहीं कर पाता। इससे और दुर्भाग्य क्या हैं ?

पिताजी की मृत्यु के बाद कथा-नायक अनुभव करता है और कहने लगता है - ''अकेलापन क्या होता है, इसका ज्ञान मुझे कब्रिस्तान से लौटने के बाद हुआ। मुर्दे में भी संबंध की कशिश होती है, यह मैं नही जानता था और यह भी मुझे नहीं मालूम था कि अकेलापन एक ऐसी मन:स्थिति का नाम है जो आदमी की चेतना को कुंद कर देती है।''[1] कथा-नायक के सारे सपने पिता की लाश के साथ दफन हो जाते हैं । पिता की मृत्यु के बाद तो उसकी संघर्ष की जिंदगी की कोई सीमा न रही। यही से उसे और अधिक कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ता हैं।

कथा-नायक की पढ़ाई का आरंभ मोहम्मद भैया के यहाँ से विभिन्न शर्तों को स्वीकार करके होता है। ईमानदारी के साथ काम करने के पश्चात भी कथा-नायक पर बहन द्वारा आरोप लगाया जाता है और घरेलू काम करने के लिए कहा जाता है। बहन की सारी शर्तों को पूरा करके कथा-नायक एक नौटंकी में सम्मिलित होता है। वहाँ उसकी भूमिका अच्छी होती है लेकिन कथा-नायक उस समय शारीरिक व्याधियों से परेशान था। वह बहन से दवा-पानी के लिए पैसे की माँग करता है। लेकिन इतने सारे काम करने के बाद भी बहन कथा-नायक को दस पैसे भी नहीं देती। वह कथा-नायक को घर से निकाल देती है और कथा-नायक वही से सेठ मिश्रीलाल के यहाँ काम करता है।

सेठ मिश्रीलाल से कथा-नायक को फूफासाहब के बड़े बेटे ने जालियाँ बनाने के कारखाने में काम के लिए तैयार किया। वह कथा-नायक को जबरदस्ती से ले चला । नायक जब मजूरी के पैसे की माँग करता है तब फूफासाहब का बेटा कहता है - ''पैसे माँगते तुम्हें शर्म नहीं आती? जितने तुम्हारे पैसे मिले हैं उससे ज्यादा का तो तुमने खाना ही खाया होगा। तुम्हें तो हमारा एहसान मानना चाहिए कि अपने घर में तुम्हें रखे हुए हैं ... ।''[2] काम के बदले में उसे सिर्फ खाना मिलता था। इस कथन को सुनकर कथा-नायक दूसरी नौकरी ढूँढ़ता है। जहाँ तक बात सत्य है कथा-नायक को उसकी, बहन और फूफा साहब के बेटे ने बेगार के रूप में देखा है। उसके

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 23
2. वही, पृष्ठ - 48

बाद वह होटल में नौकरी करता है। होटल मालिक की अच्छी सलाह के कारण और प्रिंसिपल साहब के सुझाव तथा उनकी सहायता के कारण कथा-नायक की बिगड़ती चली जिंदगी सँवर जाती है। यहाँ कथा-नायक की जिंदगी को बनाने में प्रिंसिपल साहब का सहयोग महत्त्वपूर्ण रहा हुआ परिलक्षित होता है।

कथा-नायक जिंदगी के विभिन्न अनुभवों के बाद कहता है - ''जिंदगी, जो आदमी के स्वत्व की हत्या कर दे, मौत से भी बदतर होती है लेकिन आत्महत्या उससे भी बदतरीन है। जिंदगी फिर भी एक खूबसूरत चीज है - अपनी तमाम बदतमीजियों के बावजूद ! वह भले ही बहुत बड़ा सवाल हो, पर मौत उसका जवाब नहीं है।''[1] इस उद्धरण से लेखक के विचार स्पष्ट हो जाते हैं। किसी भी संघर्षरत आदमी के लिए यही एक सही संदेश है। कितनी भी भयावह परिस्थिती का सामना करें लेकिन आत्महत्या से दूर रहे। बिस्मिल्लाह जी कहते हैं - ''संघर्ष केवल वही नहीं हैं जो चंद खास लोगों और चंद आम लोगों के बीच होता है, संघर्ष किसी आदमी का जीवित रहना भी है - जब खुद से ही लड़ता है और खुद से निपटता है, खुद से ही हारता है और खुद से ही जीतता है।''[2]

प्रस्तुत उपन्यास में लालगंज तथा आस-पास के पूरे प्रदेश में पड़े अकाल का निरूपण और अकाल पीड़ित लोगों की दयनीय स्थिति का चित्रण कम मात्रा में हुआ है। अकाल पीड़ित जनता के लिए सरकार द्वारा अनेक टेस्टवर्क और योजनाएँ आरंभ हुई थीं। लेकिन इस योजना के तहत अधिकारी वर्ग से हुए भ्रष्टाचार का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। उपन्यासकार का कहने का तात्पर्य यह है कि अधिकारियों द्वारा मजदूरों का शोषण किस प्रकार होता है। स्पष्ट है रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं। कथा-नायक टेस्टवर्क में किए काम की मजदूरी माँगने के लिए ओवरसियर साहब के पास जाता है तब वे कहते हैं - ''इस पर दस्तखत नहीं करना है, अँगूठा लगाना है।''[3] कथा-नायक चाहता है कि पढ़ा लिखा हूँ इसलिए दस्तखत करके मजूरी ले लूँ। लेकिन प्रश्न मजदूरी का था इसलिए पढ़ा-लिखा युवक भी अनपढ़ बनता है।

कथा-नायक अपने छात्र जीवन में शीला और खातून का शिक्षक भी था । छात्र जीवन में उसका छाया से प्यार हो जाता है, वह चाहता था प्यार मंजिल तक पहुँच जाए। लेकिन

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 65
2. वही, पृष्ठ - 66
3. वही, पृष्ठ - 75

वह प्यार अंत तक नहीं रह पाता। खातून के साथ भी कथा-नायक का प्यार हो जाता है लेकिन वह उसका शिक्षक था। शिक्षक का समाज में एक आदर्श स्थान होता है। कथा-नायक की जिंदगी में खातून का प्यार खिलवाड़ बनकर रह जाता है लेकिन कथा-नायक अपने आदर्श को बनाए रखने में सफल हुआ परिलक्षित होता है।

कथा-नायक फिर लालगंज से बलापुर जाता है । वहाँ सिर्फ भाभी थी, भैया नहीं थे। वह घर पहुँचते ही भाभी जोर-जोर से रोती है। कथा-नायक भाभी को समझाते हुए कहता है - ''सब्र कीजिए भाभी, अब तो जो होना था, हो गया। आपके चार-चार लड़के हैं। मैं हूँ। आपको किस बात की कमी है!''[1] कथा-नायक भाभी को उदारता से समझा रहा था। पंछी चुग गए खेत, फिर पछताने से क्या ? इसके समान भाभी की मनस्थिति हो जाती है। भाभी किए हुए दुष्कर्म पर पछताती है। कथा-नायक वही से इलाहाबाद आता है। वह वहाँ बीमार पडता है। उपन्यास का अंत कथा-नायक के पेट की बीमारी के साथ होता है।

निष्कर्ष :-

1. 'समर शेष है' अब्दुल बिस्मिल्लाह का एक सफल उपन्यास है जो आत्मकथात्मक शैली में लिखा है। उपन्यास में कथा-नायक के आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि जीवन के संघर्षमयी पक्षों का चित्रण पर्याप्त मात्रा में प्रभावशाली दृष्टिगोचर होता है।
2. उपन्यास के नायक के रूप में सात-आठ साल के मातृविहीन बालक का चित्रण किया है। अंत तक लेखक ने नायक का नाम नहीं बताया है।
3. उपन्यास के संवाद कहीं छोटे, कहीं पर लंबे हैं लेकिन संवादों से पूरा-चित्र हमारे सामने प्रस्तुत होता है।
4. उपन्यास के वातावरण का क्षेत्र विस्तृत है। बलापुर, भोपतपुर, लालगंज, उभारी, मिर्जापुर इलाहाबाद आदि उपन्यास का क्षेत्र रहा है।
5. शैली और शिल्प की दृष्टि से यह उत्कृष्ट उपन्यास है। इसकी भाषा बलापुर तथा आस-पास के गाँव की आँचलिक भाषा हैं । इसमें उर्दू, फारसी और अरबी शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। फिर भी भाषा समझने में सहज और सरल है।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - समर शेष है, पृष्ठ - 143

6. उपन्यास का उद्देश्य है कि यह उपन्यास समाज के किसी भी आदमी को जीवन के प्रति आस्थावान एवं जीवन में आनेवाले मुश्किलों, बवंडरों और परेशानियों से लड़ने का साहस और मंजिल तक पहुँचने के लिए दृढ़ विश्वास देता है।

2.2.2 झीनी-झीनी बीनी चदरिया :-

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' अब्दुल बिस्मिल्लाह का प्रकाशन क्रम के अनुसार दूसरा और बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन सन 1986 में हुआ है। उपन्यास का शीर्षक 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' पंद्रहवीं शताब्दी के संत कवि कबीर के प्रसिद्ध भजन टेक से लिया गया है।

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' बिस्मिल्लाह जी के अब तक प्रकाशित उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें बनारस के मुसलमान बुनकरों की जिंदगी किस प्रकार से सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक धरातल पर दयनीय है। इसे बड़ी संवेदनशीलता से अभिव्यक्त किया है। बिस्मिल्लाह जी कई वर्ष बुनकरों के सानिध्य में रहे हैं। उन्होंने बुनकरों के बीच रहकर उनके दुख, दर्द, परेशानियों को नजदीक से देखा, परखा और उसे यथार्थ रूप में 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में प्रस्तुत किया है। भारत भारद्वाज सही कहते हैं - ''यह उपन्यास बनारस के साड़ी बुनकरों के अटूट संघर्ष का दस्तावेज है।''[1]

उपन्यास 'ताना' और 'बाना' दो खण्डों में विभाजित है। बीच में लेखकीय उद्देश्य को व्यंजित करनेवाला 'क्षेपक' है। 'ताना' खण्ड का मुख्य कथ्य उपन्यास का नायक मतीन की संघर्ष गाथा और उसकी पराजय का दर्द है। 'बाना' खण्ड में दहेज, तलाक, कुप्रथाएँ, रूढ़ियों और सर्वहारा वर्ग के स्वप्नों तथा आशा-आकाँक्षाओं का चित्रण दृष्टिगोचर होता है। भारत भारद्वाज के मतानुसार - ''दास कबीर की जतन से ओढ़कर रख दी गई चदरिया अध्यात्म और रहस्य के ताने-बाने से बुनी गयी थी। लेकिन अब्दुल बिस्मिल्लाह के इस 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' को बनारस के गरीब साड़ी बुनकर जुलाहों ने अपने श्रम के सौंदर्य से बुना है।''[2] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि बिस्मिल्लाह जी के प्रस्तुत उपन्यास में बुनकरों की श्रमसाध्य जिंदगी का

---

1. सं. गोपाल राय - 'समीक्षा' त्रैमासिक, अक्तूबर-दिसंबर, 1987, पृष्ठ - 9
2. सं. चंद्रदेव यादव - समकालीन कथा-साहित्य का एक रुक्न, पृष्ठ - 50

चित्रण परिभाषित हुआ है। यह उपन्यास विवरणात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें पात्रों की संख्या पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है।

उपन्यास का नायक निम्न-मध्यवर्गीय समाज का जाना पहचाना चेहरा मतीन है। मतीन के पास अपना करघा और अपनी मेहनत होते हुए भी उसकी अपनी इतनी हैसियत कभी नहीं हुई कि वह अपना कतान-रेशम खरीदकर स्वतंत्र बिनकर बनकर गिरसों से अपनी गर्दन छुड़ा सकें। वह बानी पर ही बिनता है। यह हालत अकेले मतीन की नहीं बल्कि अधिकांश साड़ी बुनकरों की है। मतीन शोषण का शिकार है, वह स्थिति से समझौता नहीं करता बल्कि मुक्ति के लिए उपाय ढूँढ़ता है।

मतीन निरंतर इस धुन में पागल है कि बुनकरों के लिए एक को-ऑपरेटिव सोसाइटी बनाई जाए और बँक से कर्जा लेकर बुनकरों को आत्मनिर्भर बनाया जाए। वह शोषित बुनकर समाज का प्रतिनिधि पात्र के रूप में दृष्टिगोचर होता है । मतीन बुनकरों को संगठित करके सोसायटी बनाने का हरदम प्रयास करता है और बैंक मॅनेजर से मिलने के लिए जाता है। लेकिन बैंक में पहुँचते ही अपमान और रिश्वत की माँग, फिर टालमटोल और अंत में बैंक मॅनेजर से फटकार मिलती है - ''अब्दुल मतीन अंसारी, फ्राड़ करना चाहते हो ? वे गरजे।''[1] लेकिन उनकी गर्जना का अर्थ मतीन की समज में नहीं आया । मतीन और रऊफ चचा चुपचाप बाहर आते हैं। उन्हें पता चलता है कि हाजी गिरस द्वारा फर्जी सोसायटी बनाई गई है और उन्होंने बैंक से मिली सब राशि हड़प की है। मतीन इस आघात से पूरी तरह टूट जाता है और बनारस छोड़कर रोजी-रोटी की तलाश में मऊ चला जाता है।

मऊ जाने के बाद भी उसे चैन नहीं मिलता। वह पुन: बनारस आता है। पत्नी की बीमारी के कारण उसे करघा बेचना पड़ता है। कुछ लोग मजदूर से बानीवाले, बानीवाले से बिक्रीवाले और बिक्रीवाले से 'गिरस्ता' में बदलते जा रहे थे । दूसरी ओर मतीन बानी पर बिनते-बिनते हाजी अमीरूल्ला की कोठी में मजदूर बनकर काम करता है । उसे पराजय की पीड़ा बार-बार सताती है। वह कहता है - ''पहले तो बस एक ही गम था कि गिरस्ता की ताबेदारी करनी पड़ती थी, लेकिन यह तो चिन्ता नहीं थी कि कतान कहाँ से आयेगी ?... लेकिन

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 102

अब तो कर्ज की कई-कई पर्तें जिस्म पर चढ़ती जा रही है और मुक्ति का कोई उपाय नजर नहीं आता। करघे का कर्ज अलग, कतान का कर्ज अलग, बनिये का कर्ज अलग, कपड़े लत्ते का कर्ज अलग, बीमारी-ईमारी का कर्ज अलग ... भला यह भी कोई जिंदगी है।''[1] बुनकरों की यह दर्दनाक जिंदगी ही उपन्यास का मूल कथ्य है। बुनकर गरीब जरुर हैं लेकिन वे मूर्ख नहीं है । लोगों ने गरीबी और मूर्खता को पर्यायी माना है, जो गलत है।

बुनकरों की बुनी हुई साड़ियों में तरह-तरह की नायजाज कटौतियाँ होती थीं। कटौतियाँ गोलघर और गिरस्ताओं की कोठियों में होती थीं। उपन्यास में इन विभिन्न प्रकार की विभिन्न कोठियों का उद्‌घाटन किया हुआ परिलक्षित होता है। बुनकर अपने श्रम और मेहनत एवं कला को बेचते थे। बदले में उन्हें सिर्फ एक लुंगी और भैंस का गोश्त मिलता था। प्रेमचंद की रंगभूमि का सूरदास जॉन सेवक जैसे शोषकों के विरुध्द गरीबों को न्याय देने के लिए मरते दम तक लड़ता है और अंतिम समय में कहता है - ''हम हारे, तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोये तो नहीं, धाँधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे , जरा दम लेने दो, हार-हार कर तुम्हींसे खेलना सीखेंगे और एक-न एक दिन हमारी जीत होगी, जरुर होगी। ''[2] ठीक उसी तरह मतीन भी बुनकरों के न्याय के लिए आजीवन गिरसों से लड़ता है। लेकिन उसकी पराजय होती है। वह शोषण से मुक्ति संघर्ष की मशाल को अपने बेटें इकबाल के हाथों सौंप देता है। इकबाल संघर्ष की मशाल रुपी बागडौर को भलीभाँति निपटाता है और बुनकरों को पुन: संगठित करके उन्हें अपने श्रम का एहसास दिलाता है। वह शोषण, अन्याय और अत्याचार के खिलाफ मुक्ति के लिए संघर्ष करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में मुस्लिम समाज में स्थित तलाक और अन्य कुप्रथाओं को यथार्थ रूप से उजागर किया है। तलाक मुस्लिम समाज का ऐसा कोढ़ है, जिससे मुस्लिम समाज की अधिकाधिक निरपराध स्त्रियों की जिंदगी ध्वस्त हो जाती है। कमरुन, रेहनवा और नजबुनिया इसके प्रमाण हैं। ताड़ी के नशें में लतीफ कमरुन को तलाक तो देता है लेकिन फिर वही लतीफ फिर कमरुन को घर में ले लेता हैं, कमरुन भी उसका साथ देती है। लेकिन एक समस्या उठती है - ''दुनिया में क्या ऐसा भी कहीं हुआ है कि तलाकशुदा मुसलमान औरत बगैर 'हलाला' के

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 151-152
2. प्रेमचंद - रंगभूमि, पृष्ठ - 570

फिर अपने शौहर के साथ आकर रहने लगे ? मजहब के साथ इतना बड़ा खिलवाड़ ! इतना बड़ा गुनाह ।''[1] समाज इस बात को स्वीकार नहीं करता। लेकिन लतीफ और कमरुन इस तलाक के बंधन को तोड़कर जिंदगी बिताते हैं। लेखक का दृष्टिकोण तलाक की इस कुप्रथा को मिटाकर लतीफ के आदर्श को स्थापित करना रहा हुआ परिलक्षित होता है।

बिस्मिल्लाह जी ने हिंदू - मुस्लिम समाज के धार्मिक पक्ष को भी उजागर किया हुआ दृष्टिगोचर होता है। हिंदुओं के होली दशहरा, दुर्गापूजा और मुसलमानों के मुहर्रम, ईद, पियाला, तीज, आदि त्यौहार तथा उत्सवों का विवरण बडी सतर्कता से किया हुआ परिलक्षित होता है। यह चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इस समय बनारस में काफी दंगें भी होते हैं जिसके परिणाम सामान्य जनता को भुगतने पड़ते हैं। बुनकरों के सामने जहाँ एक ओर रोजी-रोटी की सबसे विकराल समस्या है वहाँ दूसरी ओर धर्म और रीति-रिवाज इन गरीबों के जीवन में क्षणिक सुख की अपेक्षा ढेर सारा दुख और कई रातों की नींद हराम करने आते हैं।

निष्कर्ष :-

1. 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' लेखक का विशेष रूप से बहुचर्चित और अब तक प्रकाशित उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। इसमें बुनकरों की दयनीय जिंदगी का यथार्थ चित्रण दृष्टिगोचर होता है।
2. बिस्मिल्लाह जी ने मुस्लिम समाज में प्रचलित धार्मिक बुराइयों का और बुनकरों की आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति तथा गिरसों से होनेवाले शोषण का हुबहू चित्रण प्रस्तुत किया है।
3. उपन्यास के नायक के रूप में मतीन और प्रतिनायक के रूप में शोषण कर्ता हाजी साहब का चित्रण किया हुआ परिलक्षित होता है।
4. उपन्यास के संवाद विस्तृत हैं फिर भी समझने में आसान है। संवादों से पूरे बनारस का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ - 196

5. उपन्यास में बनारस और उसके आस-पास के गाँवों की गरीबी, शोषण, बेरोजगारी, हिंसा, सांप्रदायिकता और दंगों का चित्रण प्रचुर मात्रा में मिलता है।
6. यह उपन्यास विवरणात्मक शैली में लिखा है। इसकी भाषा बनारस तथा मऊ के बुनकरों की अपनी आँचलिक भाषा है। भाषा में उर्दू और अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग की भरमार है।
7. प्रस्तुत रचना की विशेषता यह है कि लेखक ने बहुत निर्ममता से धार्मिक कुरीतियाँ और अशिक्षा आदि पर प्रहार किया है।
8. 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' का मूल उद्देश्य बनारस के निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम बुनकरों की यथार्थ जिंदगी का चित्रण करना और कबीर की परंपरा को जिवंत रखना दृष्टिगोचर होता है।

2.2.3 जहरबाद :-

'जहरबाद' बिस्मिल्लाह जी का लेखन क्रम की दृष्टि से पहला और प्रकाशन क्रम की दृष्टि से तीसरा उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन 1981 में हुआ। बिस्मिल्लाह जी का यह आत्मकथात्मक उपन्यास है जिसे 'समर शेष है' की एक कड़ी कहना ही उचित है। कम उम्र में लिखा बिस्मिल्लाह जी का सफल उपन्यास है। चंद्रदेव यादव जी से प्राप्त जानकारी के अनुसार - ''जहरबाद' का अनूदित शीर्षक-उध्वस्त संसार, अनुवादक - रमेश देशपांडे। पत्रिका का नाम - चंद्रकांत, दिवाळी अंक, 1985,।''[1] स्पष्ट है 'जहरबाद' मराठी में अनूदित होने के कारण भी सफल है। कवि त्रिलोचन के शब्दों में - ''इस उपन्यास की यह विशेषता है कि मध्यप्रदेश के किसी लेखक ने अब तक इस अँचल को नहीं छुआ है। इस उपन्यास में ऐसे चरित्रों का निरूपण हुआ है जो गरीबी की रेखा के बहुत नीचे पाये जाते हैं। दरअसल यह उपन्यास ग्रामीण परिवेश में जीवन के अस्तित्व के लिए संघर्षरत अद्‌र्ध सर्वहारा लोगों की कहानी है।''[2]

इस रचना के पीछे लेखक का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि आजाद हिंदुस्तान

---

1. परिशिष्ट - 2 (आ) से उद्‌धृत
2. सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - 'दस्तावेज' मासिक - जनवरी, 1988, पृष्ठ - 104

KOLHAPUR

की बड़ी - बड़ी योजनाओं से अनेक लोग एकदम अछूते और अपरिचित रहे हैं। इन पात्रों के द्वारा समाज की विसंगतियों का, वर्जनाओं और विषमताओं का चित्रण करना है। मनुष्य को अभावग्रस्त जिंदगी के कारण किस प्रकार जहरीले जीव में परिवर्तित हो जाना पड़ता है इस बात का जिक्र लेखक ने 'जहरबाद' में किया है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है।

'जहरबाद' का कथा-नायक हँसने-खेलने की उम्रवाला एक छोटा-सा बालक है। वह अपने बचपन से ही अब्बा और अम्माँ की गृहस्थी देखता है जिसे भोगने-झेलने को वह विवश है। वह परिस्थिति की भयावह विकटता और निरीह क्षुद्रता के कारणों को समझने की कोशिश करता है। वह जान लेता है कि सारी लड़ाई की जड़ पैसा है। अब्बा और अम्माँ की निरंतर गाढ़ी होती हुई गरीबी के साथ जीते बढ़ते बच्चे की दयनीय कहानी के टुकड़े 'जहरबाद' में संजोए हुए दृष्टिगोचर होते हैं। कथा-नायक के दादा से लेकर अब्बा तक और अम्माँ से लेकर कथा-नायक तक की परिस्थितियों में किस प्रकार परिवर्तन आ जाता है इसका चित्रण बिस्मिल्लाह जी ने बड़ी संवेदनशीलता से किया है।

कथा-नायक के पिताजी जंगल विभाग में नौकरी करते थे। नौकरी के कारण कथा-नायक का परिवार अम्माँ के गाँव 'हिनौता' में रहता था। लेकिन पिताजी की नौकरी चली जाने के पश्चात उनको भूखो मरने की नौबत आती है। अम्माँ उस समय विभिन्न प्रकार के काम करती है। कथा-नायक अपनी जिंदगी को सुनहरा बनाने की कोशिश करता है लेकिन अम्माँ और अब्बा के झगड़ों के कारण उसकी आकांक्षाएँ पूरी नहीं हो पाती। अम्माँ अब्बा से कहती है - ''तो अब नेतागिरी करोगे ? तुम इसका मतलब क्या समझोंगी, हमारी पार्टी जीत जाएगी तो सारे दु:ख-दर्द मिट जाएँगे।''[1] अम्माँ के इस कथन से अब्बा का निकम्मापन दृष्टिगोचर होता है। वे काम-धाम छोड़के नेतागिरी करने में जुड़ जाते हैं। कथा-नायक अम्माँ और अब्बा के इस दृश्य को देखकर कहता है कि पार्टी की जीत भी जिंदगी को पोस्टर बनने से रोक नहीं पाती।

इस दयनीय तथा दुखभरे अंधेरे में केवल अम्माँ और अब्बा की लड़ाई ही शामिल नहीं बल्कि लाल बाबू, मस्तू मियाँ और तमाम साफ सुथरे लोगों का शोषक चरित्र,

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - जहरबाद, पृष्ठ - 20

शहीदन फुलझर, अम्माँ की त्रासदी, भूख के साथ बढ़ती अमानवीयता और जिंदगी के जहर से हारी हुई अम्माँ की चिर-विदाई भी शामिल है। अम्माँ की कमर में दर्द है, बुढ़ापे के कारण अब्बा खटियाँ पर लेटे, आकाश की ओर देख रहे थे। उस समय अम्माँ के मुँह से आवाज आती है - ''या अल्ला। अब मौत दे दे।''[1] कथा-नायक अम्माँ की इस आवाज को सुनकर और माँ की दयनीय अवस्था को देखकर दुखी होता है। इस अवतरण से स्पष्ट होता है कि अम्माँ ने बहुत सारे काम किए थे, अब वह उससे असह्य जिंदगी नहीं जीना चाहती। वह मरना पसंद करती है और अल्ला से मौत की माँग करती है।

लेखक ने 'हिनौता' के लोगों की आर्थिक समस्याओं के साथ अकाल जैसी भयावह समस्या को भी उपन्यास में चित्रित किया है। अकाल के कारण अब्बा, अम्माँ और कथा-नायक धमनगाँव से आ रही सड़क पर मजदूरी के लिए जाते हैं। कथा-नायक सोचने के लिए मजबूर है। वह कहता है - ''सारी लड़ाई की जड़ है पैसा। घर में खाने को नहीं है इसलिए झगड़ा हो रहा है। न अब्बा कुछ कर पा रहे हैं न अम्माँ। ''[2] कथा-नायक विचार करता है कि अम्माँ और अब्बा बुढ़ापे के कारण काम नहीं कर सकते। वह तय करता है और रफीक भैया के साथ हड्डियाँ एकत्र करके बेचने का काम करता है। उनके पिताजी हड्डियाँ खरीदने का काम करते हैं। कथा-नायक अपने ममेरे भाई रफीक के साथ हड्डियाँ तौलने के लिए आता है और अनुभव करता है - ''मैं अपने ही बाप के सामने एक मजूर के रूप में खड़ा था। ... यह मेरे अब्बा का दोष था या मेरा, मैं समझ नहीं सका। ''[3] अब्बा कथा-नायक को देखते रहे लेकिन नाराज नहीं हुए। इस बात से कथा-नायक आश्चर्यचकित हो जाता है। यथार्थ की इस कठोरता को बिस्मिल्लाह जी हर-स्थिति में, हर प्रसंग में परतदर परत-दर परत खोलते जाते हैं।

अब्बा अम्माँ पर चरित्रहीनता का आरोप करते हैं और कहते हैं - ''जा, वहीं अपने यार के साथ रह। इस घर में तेरे लिए कोई जगह नहीं। कमीनी। लुच्ची। कुतिया।''[4] अब्बा क्रोध में आकर अम्माँ को पीटते हैं। तब अम्माँ टोपरा उठाकर लँगड़ाती हुई बाहर निकल पड़ती है और अपनी गोई के पास धमनगाँव चली जाती है। कुछ दिनों के बाद बेटे कथा-नायक के आग्रह के कारण वह पुन: 'हिनौता' आती है। असल में अम्माँ के लोखरी के साथ कोई संबंध

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - जहरबाद, पृष्ठ - 51
2. वही, पृष्ठ - 77
3. वही, पृष्ठ - 81
4. वही, पृष्ठ - 86

नहीं थें। वह उसकी पत्नी फुलझर के पास आया करती थी। लेकिन अब्बा चरित्रहीनता का आरोप करके अम्माँ को तलाक देते हैं। कथा-नायक उस समय कहता है आर्थिक कठिनाइयों से संघर्ष करता हुआ परिवार अन्ततः एक तमाशा बनकर रह जाता है। फैसला होता है, फैसले में अम्माँ को तलाक दिया जाता है। तलाक के बाद अम्माँ बेसहारा जिंदगी जीती हुई परिलक्षित होती है।

उपन्यास का अन्त बहुत ही निर्ममता से हुआ दृष्टिगोचर होता है। कथा-नायक अम्माँ को एक घाटी में पकरी के पेड़ के नीचे बैठी देखता है। वह माँ की दयनीय अवस्था को देखकर जोर-जोर से रोता है और अपने आपसे कहता है - ''मेरे गालों पर जो बह रहा है वह आँसू नहीं है जहर है - अभिशप्त और उपेक्षित जिंदगी का।''[1] इससे स्पष्ट है कि इस उपन्यास में यथार्थ अपनी संपूर्ण कडुवाहट और भयावहता के साथ प्रकट हुआ है। गालीब ने एक शेर कहा है - ''दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना।''[2] कोई समस्या जब बहुत मुश्किल हो जाती है तो आदमी उसके बारे में सोच-विचार करना छोड़ देता है। लेखक ने ठीक इस वाक्य के अनुरूप ही कथा-नायक की अभिशप्त जिंदगी का यथार्थ चित्रण पर्याप्त मात्रा में किया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

निष्कर्ष :-

1. 'जहरबाद' अब्दुल बिस्मिल्लाह का आत्मकथात्मक उपन्यास है। इस लघु कलेवर के उपन्यास में जीवन के दुःख का महाकाव्यात्मक चित्रण किया गया है।
2. उपन्यास का नायक हँसने-खेलने की उम्र का एक बालक है। उसे केंद्र में रखते हुए लेखक ने ऐसे परिवार का चित्रण किया है जो गरीबी की रेखा से बहुत निम्न दर्जे का जीवन जी रहा है।
3. 'जहरबाद' में चित्रित अभावग्रस्तताओं में जीवन जीनेवाले परिवार के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि इनकी लड़ाई की जड़ 'अर्थ' है। ये घटनाएँ वर्तमान जीवन की ओर संकेत करती हैं।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - जहरबाद, पृष्ठ - 100
2. सं. गोपाल राय - 'समीक्षा' त्रैमासिक, अप्रैल-जून, 1983, पृष्ठ - 63

4. उपन्यास के संवाद कहीं छोटे कहीं लंबे हैं लेकिन संवाद साधारण पाठक को भी आसानी से समझने योग्य हैं।
5. बिस्मिल्लाह जी ने 'जहरबाद' की रचना के लिए मध्यप्रदेश के मंडला जिले में स्थित हिनौता ग्राम के वातावरण का चयन किया है।
6. 'जहरबाद' आत्मकथात्मक उपन्यास होने के कारण स्वाभाविक है कि इसकी शैली आत्मकथात्क है। इस उपन्यास की भाषा मण्डला प्रदेश और आस-पास के गाँवों की आँचलिक भाषा है। भाषा में उर्दू तथा अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।
7. उपन्यास का मूल उद्देश्य यह है कि मनुष्य को आर्थिक अभावग्रस्त जिंदगी के कारण किस प्रकार जहरीले जीव में परिवर्तित होना पड़ता है इस चित्र को बड़ी संवेदनात्मक और यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत करना है।

2.2.4 दंतकथा :-

'दंतकथा' प्रकाशन क्रम की दृष्टि से बिस्मिल्लाह जी का चौथा उपन्यास है। पहले यह उपन्यास धारावाहिक रूप में 'इंडिया टुडे' से प्रकाशित हुआ। पुस्तकाकार रूप में इसका प्रकाशन सन 1990 में हुआ। उपन्यास का पहला पुस्तकालय संस्करण राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ। अपने-आप में लेखक का यह सफल उपन्यास है।

'दंतकथा' मात्र कोई 'दंतकथा' नहीं बल्कि एक मुर्गे की आत्मकथा है। लेखक का यह एक अद्भुत उपन्यास है। अद्भुत इस अर्थ में कि इसकी समूची संरचना उपन्यास के प्रचलित मुहावरे से एकदम अलग है। यह बिस्मिल्लाह जी का लघु-उपन्यास है और आत्मकथात्मक उपन्यासों की परंपरा में नवीनतम है जो हिन्दी उपन्यास साहित्य में पहली बार लिखा गया है। यही उपन्यासकार की सफलता का परिचायक है। इस उपन्यास में मनुष्य की कहानी है या मुर्गे की अथवा दोनों की, यह जिज्ञासा लगातार महसूस होती है।

उपन्यास का नायक एक मुर्गा है। पूरे उपन्यास की कथा उसे केंद्र में रखते हुए नजर आती है। उपन्यास में एक ऐसे मुर्गे की कहानी है जो मनुष्य की हत्यारी नीयत से डरकर

अपनी प्राणरक्षा के लिए इधर-उधर भागता है। वीरेंद्र मोहन लिखते हैं - ''दंतकथा उपन्यास को आज के हत्यारे और दहशतजदा समय में जीवन की चाहत और उसके लिए संघर्ष-प्रयास का उपन्यास भी कह सकते हैं।''[1] जिस प्रकार मनुष्य संघर्षमयी जिंदगी जीता है, ठीक उसी प्रकार की जिंदगी कथा-नायक मुर्गा भी संघर्षशील, शोषित जिंदगी जीता है।

'दंतकथा' उपन्यास का उद्देश्य नाबदान में फँसे एक मुर्गे के बहाने पूरी धरती पर व्याप्त भय असुरक्षा और आतंक तथा इनके बीच जीवन संघर्ष करते प्राणी की स्थिति का बेजोड़ चित्र प्रस्तुत करना है। उपन्यासकार ने मनुष्य को ही शोषण के सर्वाधिक चतुर खिलाड़ी के रूप में प्रस्तुत कर उसकी नगरीय सभ्यता के समक्ष एक बड़ा प्रश्नचिन्ह खड़ा किया है। यह उपन्यास अनेक उद्देश्यों को प्रस्तुत करता हुआ परिलक्षित होता है। यह न तो फंतासी है न प्रतीक कथा। यह उपन्यास कल्पनाप्रधान शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास में मुख्य चरित्र के रूप में एक मुर्गे को बड़े साहस के साथ 'दंतकथा' का नायक बनाने का प्रयास किया है। गौण पात्रों के रूप में कथा-नायक मुर्गे का परिवार लिया गया हैं।

उपन्यास का आरंभ मुर्गे की भयग्रस्त और आतंकग्रस्त मानसिकता से होता है। बिस्मिल्लाह जी ने दंतकथा के माध्यम से मनुष्य और अन्य प्राणियों में क्या अंतर है इस बात का भी जिक्र किया है। उन्होंने मुर्गे-मुर्गियों का रहन-सहन उनकी आदतें, प्रेमप्रसंग और उनकी आकांक्षाओं का निरूपण बड़े प्रभावशाली ढंग से किया है। इन्ही कारणों से यह उपन्यास पाठकों को सोचने के लिए बाध्य करता है।

जीवन में हर एक प्राणी को अपनी जान प्यारी होती है। मुर्गा खदेड़नेवाले से अपनी जान बचाने के लिए एक नाबदान में घुस जाता है लेकिन नाबदान में वह विभिन्न प्रकार की समस्याओं का अनुभव करता है। मुर्गे के पास सोचने की क्षमता नहीं है इसलिए वे भी भय आतंक और असुरक्षा से परेशान हैं। मुर्गा मनुष्य की दु:ष्प्रवृत्ति को जान लेता है। लेखक शहर और गाँव के अंतर को समझाते हुए कहते हैं - ''यह फर्क मनुष्यों से लेकर कुत्तों, बिल्लियों, बकरियों और चूहों तक में देखने को मिल जाता हैं।''[2] अक्सर मुर्गा शहर और गाँव के अंतर को तथा फर्क को जानना चाहता है। शुरु से लेकर अंत तक मुर्गा बहुत सारी कल्पनाओं में डूबा हुआ

---

1. सं. चंद्रदेव यादव - समकालीन कथा-साहित्य का एक रुक्न, पृष्ठ - 96
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह - दंतकथा, पृष्ठ - 11

परिलक्षित होता है। लेखक ने गाँव और शहर के लोगों में क्या अंतर होता है ? इस बात को स्पष्ट करते हुए राष्ट्रीय एकता की ओर संकेत किया है। शहर के लोग आपस में लड़ते हैं और शत्रु के सामने चुप बैठते हैं जबकि गाँव के लोग संगठित होकर शत्रु का सामना करते हैं।

मनुष्य की उपयोगितावादी वृत्ति के संदर्भ में लेखक कहते हैं - ''मनुष्यों का यह समाज, जो अपने को सभ्य, बुद्धिमान, विकसनशील और न जाने क्या - क्या कहता है, मेरे देखने में आया कि असल में यह शुद्ध रूप से उपयोगितावादी, लाभवादी और स्वार्थी है।''[1] अंडा देना बंद करने के पश्चात मुर्गे की माँ को मार डाला जाता है और जो मुर्गी अंडा देना बंद करती है, उसे बाँझ स्त्रियों की भाँति उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। लेखक यहाँ मनुष्य की उपयोगितावादी वृत्ति पर प्रहार करते हुए दृष्टिगोचर होता हैं। मनुष्य प्रकृति को उपयोगिता की दृष्टि से देखता है जब कि मुर्गे तथा अन्य पशु-पक्षीयों को प्रकृति के प्रति लगाव होने के कारण वे प्रकृति को सौंदर्य की दृष्टि से देखते हैं। मनुष्य की जाति में अमीर-गरीब, भद्र-अभद्र, सम्पन्न-विपन्न आदि का भेद किया जाता है लेकिन मुर्गे की जाति में इस प्रकार का कोई दुजाभाव नहीं किया जाता।

मुर्गा मूलत: गँवई था। उसे अपनी ही नयी जातियों के मुर्गों की जानकारी नहीं थी। शहरी मुर्गियों को देखकर वह अचंभित होता है। क्योंकि वे सफेद, अंग्रेजी साहबों की तरह थी। मुर्गा भी सोचता है कि ''आज सारी दुनिया में नस्लें बदली जा रही है। एक देश का आदमी दूसरे देश की स्त्री से संबंध जोड़कर बच्चे पैदा कर रहा है और इस तरह एक विश्वजीवन कायम हो रहा है।''[2] इस कथन से लेखक वैज्ञानिकता की ओर दृष्टि केंद्रित करते हैं। विज्ञान के कारण सभी बातें आसान हो गयी हैं अत: मुर्गियों की नयी जातियों की पैदास करना भी कठिन नहीं रहा। लेखक ने मनुष्य के प्रेम-प्रेमिका संबंधों के चित्रण के समान मुर्गो के प्रेमप्रसंगों का वर्णन भी बड़ी संवेदनशीलता से किया है।

नाबदान में रहकर मुर्गा सिर्फ सपनों को संजोता रहता है। मुर्गा नाबदान में विभिन्न कठिनाइयों का सामना करने पर भी चिंतित नहीं है बल्कि खुश है। वह कहता है - ''मुझे तो इस बात का बेहद संतोष रहा है कि मैं, हिंदू या मुसलमान न होकर मुर्गा हूँ। मैंने कई बार ईश्वर से

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - दंतकथा, पृष्ठ - 19
2. वही, पृष्ठ - 50

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

प्रार्थना की है कि वह अगले जन्म में भी मुझे मुर्गा ही बनाए, मनुष्य नहीं।''[1] लेखक हिंदू-मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता को तिलांजली देना चाहता है । ये विचार आज समाज के लिए आवश्यक हैं। हिंदू-मुसलमान आपस में अक्सर किसी न किसी कारणों को लेकर लड़ते हैं इसीलिए लेखक अपने विचारों को मुर्गे के द्वारा कहलवाते हैं। क्योंकि हिंदू-मुसलमानों के बीच की खाई कम हो जाए और राष्ट्रीय एकात्मता बनाए रहें। लेखक ने अपने इस लघु उपन्यास में महान विचारों को स्थान दिया है। जिससे मनुष्य-मनुष्य का वैरभाव समाप्त होकर वैश्विक एकता का उदय होगा।

निष्कर्ष :-

1. 'दंतकथा' अब्दुल बिस्मिल्लाह का एक अद्भुत और सफल लघु उपन्यास है। अद्भुत इस अर्थ में कि इसका नायक कोई मानव शरीरधारी जीव नहीं बल्कि एक मुर्गा हैं।
2. 'दंतकथा' मात्र कोई दंतकथा नहीं बल्कि यह एक मुर्गे के जीवन की आत्मकथा है। उपन्यास में मुर्गे की संघर्षशील जिंदगी का चित्रण लेखक ने बड़ी संवेदनात्मक दृष्टि से किया है।
3. मुर्गे की आत्मकथा के बहाने बिस्मिल्लाह जी ने हिंदू-मुसलमानों में प्राप्त धार्मिक कट्टरता पर व्यंग किया हुआ दृष्टिगोचर होता है । धार्मिक कट्टरता को तिलांजली देने से राष्ट्रीय एकात्मता को बढ़ावा देने में यह उपन्यास पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है।
4. उपन्यास के संवाद कहीं छोटे तो कहीं बडे हैं लेकिन संवादों से गाँव और शहर का पूरा चित्र हमारे सामने प्रस्तुत होता है।
5. लेखक ने उपन्यास को सफल बनाने के लिए गाँव और नगर के वातावरण को चुना है।
6. शैली और शिल्प की दृष्टि से उपन्यास क्षेत्र में एक अनूठा प्रयोग हैं 'दंतकथा' उपन्यास। लेखक की भाषा उपन्यास के कलेवर को विकसित करने और मूर्त करने में पूर्ण सक्षम है। भाषा समझने में आसान है और भाषा में उर्दू तथा अरबी,फारसी के शब्द कम मात्रा में मिलते हैं।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - दंतकथा, पृष्ठ - 81

7. 'दंतकथा' उपन्यास का उद्देश्य नाबदान में फँसे एक मुर्गे के बहाने पूरी धरती पर व्याप्त भय, असुरक्षा और आतंक तथा इनके बीच जीवन संघर्ष करते प्राणी की स्थिति का चित्रण करना है।
8. 'दंतकथा' सभी पशु-पक्षियों के जीवन और मनुष्य के जीवन को तथा फैसले को जोडता है। जीवन और जीवन संघर्ष में रूचि रखनेवाले पाठक इससे अपनी संवेदना और ज्ञान का विस्तार कर सकते हैं।

2.2.5 मुखड़ा क्या देखे :-

'मुखड़ा क्या देखे' प्रकाशन क्रम के अनुसार अब्दुल बिस्मिल्लाह का पाँचवाँ उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन 1996 में हुआ। 'मुखड़ा क्या देखे' बिस्मिल्लाह जी का कथात्मक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का शीर्षक कबीर से लिया गया है। इस उपन्यास का मूल विषय एक मुस्लिम चुड़िहार परिवार की व्यथा-कथा है। जिसे वैर विरोध और सांप्रदायिकता के कारण तथा सांप्रदायिक वैमनस्य के कारण अपना गाँव छोड़कर मध्यप्रदेश जाना पड़ता है। इस उपन्यास में स्वाधीनता आंदोलन के बाद का संवेदनात्मक चित्रण हुआ है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास का उद्देश्य हिंदू प्रजा और मुसलमान प्रजा से एक मुस्लिम चुड़िहार के परिवार का शोषण कैसे किया जाता है इस बात का उद्घाटन करना है। भगवानदास मोरवाल कहतें हैं - ''मुखड़ा क्या देखे' समग्र भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाले उपन्यासों के अलावा मुस्लिम रीतिरिवाजों के साथ-साथ हिंदू और ईसाई रीति-रिवाजों का भी चित्रण करता है।''[1]

उपन्यास में पात्रों की संख्या पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। उपन्यास का नायक अली अहमद एक मुसलमान चुड़िहार है। उपन्यास के कथानक की रीढ़ की हड्डी अली चुड़िहार है। उपन्यास में प्रतिनायक के रुप में पं. रामवृक्ष पाण्डे हैं जो हिंदू समाज का प्रतिनिधि पात्र है और मुस्लिम समाज का प्रतिनिधि पात्र है मौलवी साहब। पं. रामवृक्ष पाण्डे और मौलवी साहब का चित्रण शोषकों के रूप में किया हुआ परिलक्षित होता है।

स्वाधीनता के बाद देश की जनता खुशी में गीत गा रही थी और दूसरी ओर पं.

---

1. - 'समाज कल्याण' मासिक, फरवरी, 1997, पृष्ठ - 31

रामवृक्ष पाण्डे जैसे लालची जमीनदार दु:खी थे। वे दुखी इसलिए थे कि उनकी जमीनदारी में जो लगान की वसूली होती थी, उसका एक हिस्सा ललमुँहे के बंदरों में चला जाता था। यहाँ पं. रामवृक्ष पाण्डे की स्वार्थलोलुपता तथा देश के प्रति हीन भावना दृष्टिगोचर होती है। उपन्यास में इलाहाबाद के बलापुर गाँव का चित्रण हुआ। पं. रामवृक्ष पाण्डे स्वाधीनता के बाद और एक बात को लेकर दु:खी थे। उनके दु:ख का कारण यह था कि उनकी अंतिम कन्या लता के विवाह के लिए सारा गाँव आता है किंतु एक मुस्लिम चुड़िहार नहीं आता। इस बात को लेकर वे नाराज थे। लेकिन अली चुड़िहार पत्नी रनिया की बीमारी के कारण शादी में नहीं पहुँच सकता । इसलिए पं. रामवृक्ष पाण्डे अली चुड़िहार को मारते-पीटते हैं। पं. रामवृक्ष पाण्डे अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी उनकी नीति का उपयोग करते हैं।

पशु-पक्षी जिस प्रकार दूसरे पशू-पक्षियों को अपना हितैषी मानते हैं। ठीक इस प्रकार एक मुसलमान दूसरे मुसलमान को अपना शुभाकांक्षी मानता है लेकिन मौलवी साहब में कुछ परिवर्तन नहीं दृष्टिगोचर होता वे भी अली की बात को अस्वीकार करते हैं, जबकि पं. रामवृक्ष पाण्डे की बात को सही साबित करते हैं। अली चुड़िहार अपनी शिकायत को लेकर पंडित जवाहरलाल जी से मिलने के लिए जाता है लेकिन वे भी नहीं मिल पाते। अली सोचता था कि देश की जनता की देखभाल करना प्रधानमंत्री का काम है और उन्हें तनख्वाह भी मिलती है। लेकिन नेहरुजी के न मिलने के कारण पराजित होकर पुन: गाँव की ओर लौटता है।

पं. रामवृक्ष पाण्डे द्वारा रामकली की इज्जत लूटी जाती है। इसका जिक्र करते हुए लेखक अत्याचार के उस चित्र को बडी संवेदनशीलता से चित्रित करते हैं - ''अचानक मड़हे से एक चीख उठी और कोई आदमी अपनी धोती सँभालता हुआ दिखाई पड़ा। 'दाई दाई, ऊ दहिजरा हमरे उप्पर गिरि के हमका दबाए देत रहा...।''[1] इस खबर को सुनकर अली भी चिंतित रहता है। अली अहमद को लगता है कि फुल्ली दाई की नन्हीं सी नातिन पर लोगों की नियत बिगड़ती है तो पत्नी रनिया पर क्यों नहीं बिगड़ेंगी। रनिया को तो गाँव-गँवई करनी पड़ती है। इस डर से अली अपने परिवार के साथ बलापुर छोड़कर शहपुरा आता है। वही रहके काम-धन्धा करता है। लेखक उपन्यास में धर्म परिवर्तन की बात को भी उजागर करता हैं। अली तथा रनिया

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ - 42

बेटे बुद्धू की, शिक्षा के संबंध में धर्म परिवर्तन का विरोध करते हैं। अली की दयनीय जिंदगी का प्रभाव बुध्दू की शिक्षा पर भी पड़ता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं - ''बाण इस नगर से उस नगर में, इस जनपद से उस जनपद में बरसों मारा - मारा फिरता रहा। इस भटकन में ... कौनसा कर्म नहीं किया।''[1] ठीक इसी प्रकार अली की स्थिति हो जाती है। वह रोजी-रोटी की तलाश में बलापुर से इलाहाबाद, इलाहाबाद से शहपुरा, शहपुरा से दुल्लोपुर और फिर वापस बलापुर लौटता है। वह अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के कार्य करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में भी अकाल पीड़ितों की विभिन्न समस्याएँ दृष्टिगत होती हैं। सरकार द्वारा भेजी गई राहत सामग्री भूखे, पेटवासियों के अलावा रामवृक्ष पाण्डे जैसे जमीनदारों को मिलती हैं। लेखक यहाँ अधिकारी वर्ग की भ्रष्ट नीति का पर्दाफाश करते दृष्टिगोचर होता है। लेखकने उपन्यास में बलापुर के त्यौहारों का भी चित्र प्रस्तुत किया है। दिवाली, दशहरा आदि त्यौहारों को हिंदू-मुसलमान मिलकर बड़े धूमधाम से मनाते हैं। डॉ. ज्ञानचंद गुप्त के शब्दों में - ''भारतीय संस्कृति की यह एक विशिष्टता है कि, उसमें लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के जीवन को उज्ज्वल बनाने की भावना रही है। ग्रामीण संस्कृति के पर्व, त्योहार, मेले, कलाएँ, जन रीतियाँ, रुढ़ियाँ एवं विविध संस्कार प्रधान परम्पराएँ आदि इसके अवयव हैं। ''[2] इसके माध्यम से लोग अपने कर्मशील जीवन में भी आनंदोल्लास का अनुभव करते हैं। बलापुर के सभी हिंदू-मुसलमान त्यौहारों का आनंद प्राप्त करके दुखों को भूलने का प्रयास करते हैं।

उपन्यास में पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के युद्ध का चित्रण मिलता है। शरणार्थी के रूप में आया बंगाली बाबू भारत की प्रेमभावना को व्यक्त करते हुए अली से कहता है - ''मगर अम नईं जाएगा अल्ली भाई, कईं नईं जाएगा। कैंप के शारे लोग चले गए आज। किंतु अम इदर भाग आय। तुम लोगों से जो प्रेम मिला ही, उसे हम नईं भुला शकता। अम इदरई रहेगा।''[3] इस कथन से रचनाकार अन्य धर्मियों के प्रति भारतीय लोगों की मानवतावादी दृष्टि को उजागर करता है। अन्य देशवासियों के प्रति भारतवासियों में प्रेमभावना तथा मानवतावादी दृष्टिकोण पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

पं. रामवृक्ष पाण्डे पोते की शादी में फिल्मी गाने सुनकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त

---

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी - बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ - 13
2. डॉ. ज्ञानचंद गुप्त - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में ग्रामचेतना, पृष्ठ - 214
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ - 180

करते हुए कहते हैं - ''क्या जमाना आ गया ? ... फिल्मी गाने सुने जा रहे हैं, स्टोरियाँ सुनी जा रही है। वास्तविक ज्ञान की वार्ताओं में किसी को रुचि ही नहीं है।''[1] सृष्टिनारायण पाण्डे की दृष्टि सिर्फ हिंदू समाज तक सीमित है। लेकिन लेखक पूरे भारतवर्ष में होनेवाले संस्कृति के नैतिक पतन की ओर लक्ष्य केंद्रित करते हैं और संस्कृति के नैतिक पतन के लिए फिल्मी दुनिया को जिम्मेदार समझते हैं।

पुरवा में प्रतिवर्ष उर्स का मेला लगता है। बवाली, डॉ. रफी अहमद उर्फ बुद्धू साईकिल से मेले के लिए जाते हैं। बाकी लोग पैदल जाते हैं। मेला खत्म होते ही लोग कुल्ला-मुखारी करने के लिए कुएँ पर जाते हैं। कुएँ में उन्हें पं. सृष्टिनारायण की लाश दिखाई देती है। पूरे बलापुर में कोहराम मच जाता है। अशोक कुमार द्वारा थानें में रिपोर्ट दर्ज की जाती है। पुलिस आकर, रामदेव चमार, तोते पासी और डॉ. रफी अहमद उर्फ बुद्धू को गिरफ्तार करती है। गरीबों के होनेवाले शोषण के खिलाफ आवाज उठाते हुए बवाली कहता है - ''आज गाँव के तीन निरदोस लोग फँसे हैं, कल तीस लोग फँसेंगे। परसों क्या होगा पता नहीं ? ई जुलम, ई सोसण, का सब लोग बरदास करेंगे ?''[2] सृष्टिनारायण पाण्डे की मृत्यु मुन्ना नचनिया करता हैं क्योंकि पाण्डे जी उसके ऊपर भी आजीवन अत्याचार करते रहे थे। लेकिन इन तीनों को बिना अपराध किए गिरफ्तार किया जाता है। अशोककुमार पाण्डे भी दादा की शोषणरूपि मशाल को अंत तक जलाते हैं और गरीबों का शोषण करते हैं।

निष्कर्ष :-

1. 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में एक मुस्लिम चुड़िहार परिवार की दर्दनाक व्यथा का चित्रण हुआ परिलक्षित होता है।
2. उपन्यास का नायक अली अहमद है जो चुड़िहार परिवार का मुखिया है और प्रतिनायक के रूप में पंडित रामवृक्ष पाण्डे का चित्रण हुआ है।
3. इसमें हिंदू - प्रजा के प्रतिनिधि रामवृक्ष पाण्डे और मुसलमान प्रजा के प्रतिनिधि मौलवी साहब के द्वारा अली चुड़िहार के परिवार का शोषण अंत तक चलता रहा है।

---

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ - 207
2. वही, पृष्ठ - 219

4. उपन्यास के संवाद समझने में आसान हैं। संवाद कहीं छोटे तो कहीं लंबे हैं, फिर भी साधारण पाठक इसे तुरन्त ग्रहण कर सकते हैं। इसमें लोकगीतों का चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

5. उपन्यास में परिवेश तथा देशकाल वातावरण व्यापक रहा है। इसमें बलापुर, शहपुरा, इलाहाबाद, पुरवा और दुल्लोपुर के परिवेश को चित्रित किया है। इसमें 1947 से 1977 तक यानी तीन दशकों का वातावरण दृष्टिगोचर होता है।

6. विवरणात्मक शैली में लिखा गया बिस्मिल्लाह जी का यह एक सफल उपन्यास है। उपन्यास की भाषा में बलापुर, दुल्लोपुर, शहपुरा आदि गावों की आँचलिक भाषा का और इसमें अंग्रेजी, फारसी, अरबी, बंगाली आदि शब्दों के साथ-साथ मुहावरे और लोकोक्तियों का भी चित्रण मिलता है।

7. 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास का उद्देश्य बलापुर गाँव के एक चुड़िहार परिवार के होनेवाले शोषण को यथार्थता के साथ प्रस्तुत करना और अन्याय के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरित करना रहा है। इस उपन्यास का दूसरा उद्देश्य है मुस्लिम समाज के रीति-रिवाजों के साथ-साथ इसमें हिंदू और ईसाई रीति-रिवाजों का चित्रण करना भी रहा है।

समन्वित मूल्यांकन :-

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण के पश्चात मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'समर शेष है' से लेकर 'मुखड़ा क्या देखे' तक के सभी उपन्यासों की विषय वस्तुओं में विविधता है। 'समर शेष है' में कथा-नायक के आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक जीवन के संघर्षमयी पक्षों का यथार्थ चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में बनारस के मुसलमान बुनकरों की जिंदगी का, उनकी दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है। बुनकर धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सभी धरातल पर कैसे अभावग्रस्त जिंदगी जी रहे हैं इसका चित्रण प्रस्तुत है।

13828

'जहरबाद' में कथा-नायक को केंद्र में रखते हुए बिस्मिल्लाह जी ने ऐसे परिवार का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है जो गरीबी की रेखा के बहुत नीचे का जीवन जी रहें हैं। अत: इसमें जीवन के दुख का महाकाव्यात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। 'दंतकथा' कोई दंतकथा न होकर एक मुर्गे की आत्मकथा है। इसमें मुर्गे की संघर्षमयी जिंदगी का यथार्थ चित्रण किया गया है। 'मुखड़ा क्या देखे' में मुस्लिम चुड़िहार के परिवार का, हिंदू प्रजा और मुस्लिम प्रजा की ओर से किस प्रकार शोषण होता है इसका और उसकी दयनीय जिंदगी का स्वाभाविक चित्रण मिलता हैं।

बिस्मिल्लाह जी के उपन्यासों में पात्रों का चित्रण प्रभावशाली ढंग से हुआ है। उनके उपन्यासों में सभी वर्ग के पात्र परिलक्षित होते हैं लेकिन लेखक की दृष्टि सर्वहारा वर्ग की ओर अधिक केंद्रित है। उनके उपन्यासों के संवाद मार्मिक हैं जो थोड़े शब्दों में गागर में सागर भर देते हैं और पूरी स्थिति का खुलासा कर देते हैं। विवेच्य उपन्यासों में वातावरण का चित्रण यथार्थ रूप में किया हुआ दृष्टिगोचर होता है। भाषा पर बिस्मिल्लाह जी का जबरदस्त अधिकार है। उनके उपन्यासों का उद्देश्य अन्याय, अत्याचार एवं शोषण के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित करना है। अत: स्पष्ट है कि उनके उपन्यासों में यथार्थ के साथ-साथ आदर्श भी दृष्टिगोचर होता है।

❑❑❑❑